ORIGINAL RESEARCH PAPER

Education

KEY WORDS:

''विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सह–शैक्षणिक गतिविधियों के महत्व का अध्ययन''

संध्या (पीएच.डी. शोधार्थी) शिक्षा संकाय, एस.के.डी. विष्वविद्यालय, सूरतगढ़ रोड़, हनुमानगढ़ (राज.)

डॉ. सपना (शोध निर्देषिका) शिक्षा संकाय, एस.के.डी. विष्वविद्यालय, सूरतगढ़ रोड़, हनुमानगढ़ (राज.)

प्रस्तावना –
भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा को प्रकाशपुंज माना गया है। यह अज्ञान रूपी अंधकार का सर्वनाश कर जगत् में ज्ञान रूपी प्रकाश आलोकित करती रही है। भारत विद्या, लाभ व शिक्षा के कारण ही जगद्गुरू की पदवी पर विराजमान रहा है। भारत का इतिहास गवाह है कि यहां प्रदेश, देश और विदेश के छात्र ज्ञान प्राप्ति के लिए आया करते थे। नालंदा, तक्षशिला व काशी के प्राचीन विश्वविद्यालय इसके प्रमाण रहे हैं अर्थात् ज्ञान रूपी गंगा, सरस्वती रूपी सरिता यहां सदा–सर्वदा से प्रवाहमान रही है एवं मानवता की ज्ञान पिपासा को शांत करती रही है एवं उसे ऊर्जा प्रदान करती रही है।

शिक्षा जीवन का सम्पूर्ण शास्त्र है। ज्ञान का अंतिम लक्ष्य चरित्र निर्माण करना है। शिक्षा चारित्रिक विकास की एक मान्य प्रक्रिया है और शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की चारित्रिक व मानसिक शक्तियों का विकास करना है।

जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया शिक्षा अपनी वास्तविक अर्थ में 'सीखना' से जुड़ी है। शिक्षा मनुष्य द्वारा अपने आन्तरिक एवं बाह्य परिवेश के साथ समायोजित होने की कला है। शिक्षा जीवन का आईना है। जिसमें मनुष्य अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को प्रतिबिम्ब के रूप में देखता है, ये प्रतिबिम्ब ही संसाधन बनकर मानव व्यक्तित्व का मार्ग प्रशस्त करते हैं। डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था कि ''शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं है और न ही यह विचारों की संवर्धन स्थली है और न ही नागरिकता की पाठशाला है, यह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की दीक्षा है। सत्य की खोज में लगी मानव आत्मा का प्रशिक्षण है।'' इस प्रकार शिक्षा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का आधार है। सही और गलत के मध्य फैसला करने का माध्यम है। निश्चित तौर पर शिक्षा जीवन के पुराने प्रतिमानों को समय की नई मांगों के अनुकूल बनाने या सांमजस्य बैठाने के रूप में देखा जा सकता है। समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों को शिक्षा के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। वहीं समाज में नव चेतना का संचार कर विकास के मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है।

शिक्षा ही व्यक्ति को प्रदेश, देश एवं विदेश की संस्कृति से अवगत करवाती है। किसी भी राष्ट्र के इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, सांस्कृतिक परम्पराओं, धार्मिक रीति–रिवाजों, आध्यात्मिक विश्वासों, सामाजिक सरोकारों, राजनैतिक घटनाओं एवं वैश्विक वातावरण से अवगत करवाकर उसके व्यक्तित्व, विचारों और व्यवहार की संकीर्णता का प्रसार कर सम्पूर्ण मानवता के लिए तैयार करती है।

वर्तमान में शिक्षा के केंद्र विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय एवं शिक्षण संस्थानों को स्वीकार किया जाता है। जहां औपचारिक संसाधनों के माध्यम से शिक्षा प्रदान कर व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करने का उपक्रम किया जाता है। विद्यालयी औपचारिकताओं से मानव के केवल ज्ञानात्मक पक्ष का विकास हो पाता है। उसका भावात्मक, कौशलात्मक पक्ष छूट जाता है। वह केवल 'किताबी–कीड़ा' बन जाता है तथा अपने को 'कूप मण्डूक' समझने लगता है। उसके विचारों में संकीर्णता व्याप्त हो जाती है। वह स्वार्थी, असमायोजित हो जाता है।

वर्तमान में शिक्षा और सह–शैक्षणिक क्रिया–कलापों को एक–दूसरे का पूरक माना जाता है। जहां शिक्षा बालक के ज्ञानात्मक पक्ष का विकास करती है वही अनुरंजन या सह–शैक्षणिक क्रिया कलाप उसके भावात्मक एवं कौशलात्मक पक्ष का विकास करती है।

आज शिक्षा को बालक के सर्वांगीण विकास का सशक्त माध्यम स्वीकार किया गया है। आज शिक्षक केन्द्रित नहीं रहे न ही पाठ्यक्रम की प्रधानता है। आज वह बाल केन्द्रित हो गई है। शिक्षा बालक की मानसिक क्षमता, शारीरिक क्षमता, संवेगात्मक स्थिति एवं रूचि आदि के अनुसार प्रदान की जाती है। विद्यालय में पाठ्यक्रम की पढ़ाई के परे भी बहुत से कार्यक्रम आयोजित किए जाने लगे हैं ताकि बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का संतुलित विकास सम्भव हो सके। बालक विद्यालयी औपचारिकताओं से ऊब जाता है। असहज महसूस करने लगता है, मानसिक थकान हो जाती है। यदि उसे इस समय सह–शैक्षणिक क्रिया–कलाप करने को कहा जाए तो उसकी ऊब, नीरसता, थकान दूर हो सकती है तथा शारीरिक व मानसिक रूप से अपने को स्वस्थ महसूस करता है। सह–शैक्षणिक क्रियाएं उसे कलाबोध, सौन्दर्यबोध, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, मर्यादा, सहयोग, भावुक, दयालु व जागरूक नागरिक बनाती है। विशिष्ट बालक भी अपने को समायोजित कर लेते हैं। एक स्वस्थ संस्कृति मनुष्य बनाने में सहायक होती है।

सह–शैक्षणिक गतिविधियां –
बालक को विद्यालय में सूचनात्मक ज्ञान देकर शिक्षक उसके ज्ञानात्मक पक्ष का तो प्रबल विकास कर देता है परंतु उसकी तुलना में भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का विकास नहीं हो पाता है। अतः इन पक्षों के विकास के लिए सह– शैक्षणिक गतिविधियों का होना अति आवश्यक है। सह–शैक्षणिक गतिविधियों द्वारा बालकों में उनके गुणों यथा – अनुशासन, मर्यादा, संयम, नियमितता, स्वच्छता, शिक्षकों के प्रति आदर की भावना, विद्यालय एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति के प्रति सुरक्षा एवं समाज सेवा की भावना, सौंदर्य बोध कलाओं के प्रति आदर, श्रम, सहयोग आदि का विकास सम्भव है।

शिक्षा और सह–शैक्षिक क्रिया परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। शिक्षा की कोई भी प्रणाली जिसमें खेल या अन्य सह–शैक्षिक क्रिया को उचित स्थान प्राप्त नहीं होता, अपूर्ण मानी जाती है। यद्यपि शिक्षा के विगत इतिहास पर दृष्टि डालने से सम्भवतः प्रतीत होता है कि जब शिक्षक शिक्षा का केंद्र माना जाता था, बालक के लिए खेल या अन्य सह–शैक्षिक क्रिया को कम महत्व दिया जाता हो तथापि जब हम अब से कुछ वर्ष पूर्व की शिक्षा–प्रणाली पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट होता है कि तब भी बालकों को अध्ययन कार्य के अतिरिक्त खेलने के अवसर देना विद्यालय का दायित्व माना जाता था परन्तु शिक्षा के विकास के साथ–साथ जब से बालक को शिक्षा का केन्द्र स्वीकार किया गया है तब से शिक्षा में सह–शैक्षिक पक्ष को निरन्तर अधिकाधिक महत्व दिए जाने के प्रयत्न होते रहे हैं। इतना ही नहीं, ज्यों–ज्यों हम अपनी शिक्षा का पुनर्गठन, जनतंत्र के लिए सुयोग्य नागरिकों के निर्माण की दिशा में करने हेतु आगे बढ़ते जा रहे हैं, खेलों के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियां भी विद्यालयी कार्यक्रम का अविभाज्य अंग बनती जा रही है। शैक्षिक कार्यक्रम में इन नई–नई प्रवृत्तियों को समग्र रूप से सह–शैक्षणिक गतिविधियां कहा जाने लगा है।

खेल अथवा शारीरिक शिक्षा को अब सह–शैक्षणिक क्रियाओं के एक अंग के रूप में ही जाना जाता है।

सह–शैक्षणिक क्रियाओं से विद्यालयों को विविध प्रकार के शैक्षिक अनुभव मिलते हैं तथा विभिन्न वातावरण से आये बालकों में सहयोग एवं सह–अस्तित्व की भावना का विकास किया जा सकता है। देश का भविष्य इन बालक–बालिकाओं पर निर्भर करता है। अतः इनका सर्वांगीण विकास होना अति आवश्यक है।

<u>परिभाषाएं</u> :
डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार –
वे क्रियाएं जो व्यक्ति की अन्तः प्रेरणा से की जाती है और जिनके सम्पादन में उसे खेल से प्राप्त आनन्द की सी अनुभूति होती है, उन्हें सह–शैक्षिक क्रियाएं कहा जा सकता है।'

व्यास एवं बाघेला के अनुसार –
'वस्तुतः पाठ्यक्रम क्रियाकलाप केवल ज्ञानात्मक उद्देश्य की पूर्ति अधिक करते हैं। ज्ञानोपयोग अवबोध, कौशल, रूचि, उद्देश्यों की पूर्ति सह–शैक्षणिक गतिविधियां से होती है।'

सुल्तान मुहीयुद्दीन के अनुसार –
'इन क्रियाओं को अब अतिरिक्त नहीं माना जाता बल्कि ये विद्यालय कार्यकम का एक अभिन्न अंग हैं।'

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में केवल किताबी ज्ञान ही बालक के व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता है अर्थात् पुस्तकीय ज्ञान केवल बालक के व्यक्तित्व के किसी एक पक्ष का ही विकास कर सकता है। जबकि शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास

करना स्वीकार किया गया है। अतः शिक्षा के औपचारिक साधनों के साथ–साथ अनौपचारिक साधनों को भी इसके पूरक के रूप में स्वीकार करना होगा तभी शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव है।

सह–शैक्षणिक गतिविधियों की उपादेयता के सम्बन्ध में भारतीय शिक्षा आयोग (1964–66) का मत "ऐसा युग जिसमें खोज और अनुसंधान को महत्व दिया जाता है, में रचनात्मक अभिव्यक्ति अतिरिक्त महत्व रखती है परन्तु दुर्भाग्य से ललित कलाओं को वास्तविक शिक्षा में उस तरह माना जाता है जैसे वस्त्र की शोभा के लिए झालर या मंगजी को और वे परीक्षा विषयों में न होने के कारण तिरस्कृत है। संगीत और चित्रकला के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।

भारतीय शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन और सह–शैक्षणिक गतिविधियां –
भारतीय शिक्षा आयोग ने सह–शैक्षणिक कार्यक्रमों पर किसी स्वतंत्र प्रकरण में चर्चा न कर विद्यालय पाठ्यक्रम के प्रकरण में दो अवतरणों, अप्रत्यक्ष विधियों द्वारा शिक्षा और रचनात्मक प्रवृत्तियों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। "विद्यालय की समस्त प्रवृतियां उद्देश्य निष्ठता से प्रेरित होनी चाहिए और यह उद्देश्य निष्ठता, वहां के जीवन, चेष्टा और वातावरण में प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। विद्यालय प्रार्थना–सभा, पाठ्य–पुस्तकीय और पाठ्येत्तर प्रवृत्तियां, सर्व धर्म पर्यायोजन, कार्यानुभव, सामूहिक खेल और क्रीड़ा प्रतियोगिताएं विभिन्न पाठ्य विषय परिषदें और समाज सेवा कार्यक्रमों, बालकों में सहयोग, आपसी आदर, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल्यों के विकास में सहायक हो सकते हैं। इन मूल्यों का आज जब युवक और युवतियां चारित्रक संकट में से गुजर रहे हैं। भारतीय समाज में विशेष महत्व है।"

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान का अभिमत भी प्रेरणा एवं प्रगतिशील रहा है – "पाठ्य–पुस्तकों में उचित संशोधन एवं नई पाठ्य–पुस्तकों का निर्माण करते हुए प्रजातांत्रिक गुणों की प्रतिस्थापना की जा सकती है। शिक्षण संस्थानों में उपयुक्त सौंदर्यपूर्ण वातावरण के सृजन द्वारा, अध्यापकों एवं अभिभावकों के अनुकरणीय आचरण द्वारा उत्सवों, त्यौहारों में सक्रिय भागीदारी द्वारा, प्रवचनों, वार्त्ताओं, परिचर्चाओं, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से स्काउटिंग, एन.सी.सी., एन.एस.एस. एवं समाजोपयोगी उत्पादन कार्य तथा समाज सेवा के उपादानों के माध्यम से शिक्षा को उपयोगी बनाया जा सकता है। अतः शिक्षण संस्थाओं में औपचारिक कक्षा–कक्ष के अतिरिक्त सहगामी प्रवृत्तियों, प्रार्थना सभा एवं खेलों की सही ढंग से संगठन एवं संचालन वांछित है।"

जिस प्रकार शारीरिक गठन के लिये विविध प्रकार के व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार बौद्धिक विकास के लिये विविध सह–शैक्षिक प्रतियोगिताएं आवश्यक है।

सह–शैक्षिक गतिविधियों के उद्देश्य –

1. बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास– पुस्तकीय ज्ञान से बालकों का एकांगी विकास होता है। इन विविध प्रकार के क्रिया–कलापों तथा सांस्कृतिक सर्वांगीण विकास सम्भव होता है।
2. बालकों की विद्यालय के प्रति रूचि उत्पन्न करना – छोटी आयु के बालकों व किशोरी में ये प्रवृत्तियां खेल व क्रियाशीलन द्वारा विद्यालय के प्रति रूचि एवं आकर्षण उत्पन्न करने में सहायक होती है। उनका समुचित विकास होता है।
3. बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास – इन क्रियाओं द्वारा बालक के अन्तर्निहित क्षमताओं एवं शक्तियों के निदान एवं उनका समुचित विकास होता है।
4. समाजोपयोगी नागरिक का विकास – इन सह–शैक्षणिक गतिविधियों द्वारा लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित समाज के अनुकूल गुणों का विकास होता है।
5. पाठ्यक्रमीय कलागत कार्यों को रोचक बनाना – ये क्रिया–कलाप पाठ्यक्रमीय कार्य की पूरक है तथा उसे रोचक व बोधगम्य बनाकर अर्जित ज्ञान की व्यावहारिक व स्थायी बनाता है।
6. अवकाश के समय का सदुपयोग – ये क्रियाऐं बालकों को अपने अवकाश के समय का स्वस्थ मनोरंजन द्वारा सदुपयोग करने की प्रेरणा देती है।
7. कर्मशील बनाना।
8. स्वस्थ्य प्रतियोगिता की भावना का विकास करना।
9. कुसमायोजी (पिछड़े, प्रतिभाशाली) बालकों के समायोजन में सहायता करना।
10. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को प्राथमिकता देना।
11. सामुदायिकता की भावना का विकास करना।
12. नेतृत्वएवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास – विभिन्न क्रिया–कलापों के नियोजन, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में विद्यार्थियों के सहभागिता द्वारा उनमें नेतृत्व एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।
13. स्वनुशासन का प्रशिक्षण – ये क्रियाऐं विद्यालयों में अनुशासनहीनता की समस्या का निराकरण कर विद्यार्थियों को स्वानुशासन का प्रशिक्षण प्रदान करती है।
14. लोकतांत्रिक जीवन शैली का विकास – विद्यार्थी परिषद् या संसद एवं विभिन्न क्रिया–कलापों हेतु गठित समितियों के क्रिया–कलापों से विद्यार्थी लोकतांत्रिक संस्थाओं से अवगत होते हैं तथा उनमें लोकतांत्रिक संस्थाओं की जीवन शैली अपनाने की प्रेरणा मिलती है।
15. चारित्रिक विकास – इन प्रवृतियों के माध्यम से उनमें अनेक नैतिक गुणों का विकास होता है, जिससे उनका चारित्रिक उत्थान होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 बघेला, एच.एस. "शैक्षिक प्रशासन एवं विद्यालय संगठन", राजस्थान प्रकाशन जयपुर, 2006
2 सरीन एवं सरीन "शैक्षिक अनुसंधान की विधियां", विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2, 2007
3 सिंह, रामपालविद्यालय प्रशासन एवं संगठन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2, 2007
4 मिश्रा, महेंद्रकुमार"शैक्षिक प्रशासन एवं विद्यालय संगठन", यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स प्रा.लि., जयपुर
5 सुखिया, एस.पी. "शैक्षिक अनुसंधान के तत्व", नई दिल्ली 1966
6 अग्रवाल एस.बी. "भारत में शिक्षा का आलोचनात्मक अध्ययन", अमिताभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983
7 पुर्गिस, वी.आर."भारत में नई शिक्षा", द सोसाइटी पब्लिकेशन्स, अम्बाला कैंट
8 मिश्रा, वी.एन."अध्यापन भारतीय दृष्टि", एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1998
9 रेड्डी, के.एन."शिक्षार्थी शिक्षक एवं अभिभावक", अजन्ता पब्लिकेशन्स हाउस, नई दिल्ली 1984
10 सुखिया, एस.पी. "शैक्षिक अनुसंधान के तत्व", नई दिल्ली 1966